IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

चार्वाक, जैन एवं बौद्ध दर्शन की सृष्टि संबंधी कार्यकारण की अवधारणा

नवल किशोर

चार्वाक – चार्वाक दर्शन में सृष्टि के उपादान कारण के रूप में चार भूतों – पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि को स्वीकार किया गया है।[1] चार्वाक सृष्टि के निमित्त कारण के रूप में कोई कारण नहीं मानता, उसकी सृष्टि में वस्तुएँ स्वभावतः उत्पन्न होती है। इसलिए उसके कार्य–कारण संबंधी मत को स्वभाववाद या यदृच्छावाद कहा जाता है। यादृच्छ का अर्थ है – वस्तुओं की उत्पत्ति बिना किसी निमित्त कारण के अकस्मात् होना। चार्वाक दर्शन चूँकि निमित्त कारण को स्वीकार नहीं करता अतः उसकी एक विशेषता है कि वह मूल उपादान कारण के रूप में केवल जड़तत्त्व को मानता है। इन चार तत्त्वों के विविध अनुपातों में विविध सम्मिश्रण होने से बाह्य जगत्, भौतिक शरीर, इन्द्रियाँ आदि उत्पन्न होती है। चैतन्य भी भौतिक तत्त्वों के सम्मिश्रण से जीवित शरीर में उत्पन्न होता है। अतः जीवित शरीर से भिन्न कोई आत्मा नहीं है।[2] भले ही अचैतन्य के विविध भौतिक घटकों में से किसी में भी चैतन्य नहीं होती, किन्तु उनका एक विशेष अनुपात में जीवित शरीर में सम्मिश्रण होता है तो उससे चैतन्य गुण उत्पन्न हो जाता है। जिस प्रकार मदिरा के विभिन्न घटकों में से किसी में भी मादकता नहीं होती है, किन्तु जब उनमें विशेष प्रक्रिया से विकार उत्पन्न किया जाता है तो मदिरा में मादकता नामक गुण उत्पन्न हो जाते हैं।[3] पान, कत्था, चूना, सुपारी में से किसी में

लालिमा नहीं होती है, किन्तु जब उन्हें मिलाकर खाया जाता है तो लाली उत्पन्न हो जाती है।[4]

जैन – जैन दर्शन के कारणता संबंधी सिद्धान्त सत् असत् कार्यवाद कहलाता है। इसका अर्थ हुआ कि वस्तु सत् तथा असत् दोनों का समन्वय है। प्रत्येक वस्तु में दो अंश होते हैं, नित्यांश और अनित्यांश। नित्यांश के कारण प्रत्येक वस्तु नित्य या ध्रुव (ध्रौव्यात्मक) है और अनित्यांश के कारण उत्पत्ति–विनाशशील (उत्पादव्यायात्मक) है। 'सत्' का लक्षण है उत्पाद, व्यय (विनाश) और ध्रौव्य (नित्यव्य) युक्त होना।[5] प्रत्येक वस्तु या द्रव्य के अनन्त धर्म होते हैं। इन धर्मों में कुछ धर्म वस्तु के 'स्वरूप' होते हैं, अर्थात् उस वस्तु के आवश्यक, अनिवार्य और अपृथक् धर्म होते हैं जिन्हें वस्तु से अलग नहीं किया जा सकता। इन स्वरूप धर्मों को 'गुण' की संज्ञा दी गई है, तथा वस्तु के अनेक धर्म 'आगन्तुक' होते हैं, अर्थात् उस वस्तु में आते–जाते रहते हैं, उत्पन्न और विनष्ट होते रहते हैं, इन आगन्तुक धर्मों को 'पर्याय' की संज्ञा दी गई है। अतः 'द्रव्य' का लक्षण है 'गुणपर्याय' वाला होना।[6] चेतन जीव और अचेतन अजीव दो प्रमुख और स्वतंत्र तत्त्व है।

बौद्ध – बौद्ध दर्शन के कार्यकारणवादी सिद्धान्त को 'प्रतीत्यसमुत्पाद' कहते हैं। 'प्रतीत्य' का अर्थ है 'निर्भर अथवा आश्रित रहकर', समुत्पाद का अर्थ है 'उत्पत्ति'। अतः प्रतीत्यसमुत्पाद का अर्थ हुआ कारण पर निर्भर रहकर कार्य की उत्पत्ति।[7] कार्य सदा कारण सापेक्ष होता है। कारण के होने कपर ही कार्य होता है तथा कारण न रहने पर कार्य नहीं रहता है और न उत्पन्न हो सकता है। कारण–कार्य शृंखला रूप प्रतीत्यसमुत्पाद द्वादशांङ्ग–चक्र है जिसे भवचक्र, संसारचक्र, जन्ममरणचक्र और धर्मचक्र भी कहा जाता है। इसके द्वादश अंग कारण–कार्यरूप से चक्रवत घूमते रहते हैं। प्रथम अंग द्वितीय अंग का कारण है, द्वितीय अंग तृतीय अंग का और इस प्रकार यह चक्र चलता रहता है। ये द्वादश

अंग हैं – (1) अविधा (2) संस्कार (3) विज्ञान (4) नाम–रूप (5) षडायतन (6) स्पर्श (7) वेदना (8) तृष्णा (9) उपादान (10) भव (11) जाति और (12) जरा–मरण। मरण इस चक्र का अंत नहीं है, मरण के बाद भी अविद्या और कर्म संस्कार रहते हैं, जो नये जन्म का कारण बनते हैं और इस प्रकार यह जन्म मरण चक्र चलता रहता है।

संदर्भ–सूची :

1. बृहस्पति सूत्र – पृथिव्यप्तेजोवायुरिति तत्त्वानि।
2. भारतीय दर्शन आलोचना और अनुशीलन – चंद्रधर शर्मा, पृष्ठ–26
3. किण्वादिभ्यो मदशक्तिवद विज्ञानम्।
4. ताम्बूलपूगचूर्णानां योगाद् राग इवेत्थितम्।
5. उत्पादव्ययध्रौव्यसंयुक्तं सत् – तत्त्वार्थसूत्र 5, 29
6. गुणपर्यायवद् द्रव्यम् – वही, 5, 37
7. हेतुप्रत्यययापेक्षो भावानामुत्पादः